मनोविज्ञान की समृद्ध आधारशिला के रूप में सांख्य दर्शन

डॉ. रमेन्द्र कुमार गुप्त

एसोसिएट प्रोफेसर

शिक्षक शिक्षा विभाग, दयानन्द वैदिक कॉलेज, उरई जालौन

प्रस्तावना

भारतीय षष्ठ दर्शनों की सर्वाधिक प्राचीन शाखा सांख्य, विशुद्ध दर्शन के क्षेत्र में एक विलक्षण प्रयास है। भारतीय आस्तिक दर्शनों की श्रृंखला में आते हुए भी सांख्य अनीश्वरवादी दर्शन की श्रेणी में स्थापित है। जिसकी सार्थकता वर्तमान सामाजिक जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में अनुभव की जा रही है। दर्शन इस ब्रम्हाण्ड और उसमें मानव जीवन के स्थान व अस्तित्व की व्याख्या कर, मानवीय जीवन के सर्वोपरि लक्ष्य का मार्ग प्रशस्त करता है। इन्ही लक्ष्यों की प्राप्ति के मार्ग में मनुष्य जीवन पथ पर आगे बढ़ते हुए विभिन्न प्रकार की क्रियायें करते हुए, व्यवहार को प्रदर्शित करता है। प्राणियों व मनुष्य के मानवीय व्यवहार का विज्ञान मनोविज्ञान कहलाता है। इसे व्यवहारिक जीवन के समायोजन का विज्ञान भी कहा जाता है। मनोविज्ञान व्यवहार से सम्बन्धित क्या, क्यों, कैसे प्रश्नों का उत्तर देने का प्रयास करता है। साथ ही मानवीय व्यवहार को समझने, व्यवहार के सम्भाव्य कारणों को पहचानने या उनका अनुमान लगा, व्यवहार को नियन्त्रित करने में सहायता करता है। जिसके परिणाम स्वरूप मानवीय जीवन में सम्पादित होने वाली विभिन्न क्रियाओं व सम्पूर्ण जीवन शैली को परिष्कृत किया जा सकता है।

सांख्य दर्शन के सन्दर्भ में यह कथित है कि यह एक यथार्थवादी दर्शन है इसके अन्तर्गत प्रकृति एवं पुरूष, सृष्टि के विकास क्रम तथा कार्य–कारण वाद का जो वर्णन मिलता है वह इस दर्शन की अप्रतिम विशेषता है। सांख्य दर्शन मनुष्य को यह बताता है कि प्रकृति ही (Primal Nature) मनुष्य को अनेक कर्मो में प्रवृत्त कराती है। जिससे मनुष्य सांसारिक दुखों (आध्यात्मिक, आदि–भौतिक, आदि–दैविक) की ओर प्रवृत्त होता है। इन्हीं सांसारिक दुखों की निवृत्ति की जिज्ञासा से सांख्य दर्शन का प्रारम्भ होना इसकी व्यवहारिकता का धोतक है। अतः सांख्य दर्शन अत्यन्त बौद्धिक एवं मनोवैज्ञानिक दर्शन है। सांख्य दर्शन के प्रमुख पाश्चात् विचारक **गार्वे** ने कहा है कि मानव मस्तिष्क का पूर्ण–स्वातन्त्रय और उसका अपनी शक्तियों के प्रति पूर्ण विश्वास विश्व के इतिहास में सर्वप्रथम सांख्य दर्शन के अन्तर्गत ही प्रदर्शित हुआ है।

सांख्य दर्शन एवं मनोविज्ञान

प्राचीन समय में मनोविज्ञान का अस्तित्व स्वयं में दर्शन शास्त्र से पृथक नहीं था। मानव के ज्ञान में वृद्धि के साथ ही दर्शन की एक शाखा के रूप में मनोविज्ञान का स्फुटन हुआ।

स्वतंत्र शाखा के रूप में विकसित होने के क्रम में मनोविज्ञान के अर्थ में कई परिवर्तन हुए है मनोविज्ञान की इस विकास यात्रा को वुडवर्थ (1869–1962) ने निम्न शब्दों में अभिव्यक्त किया है– ''सर्वप्रथम मनोविज्ञान ने अपनी आत्मा का त्याग किया, फिर मन का त्याग किया, फिर इसने अपनी चेतना का त्याग किया अब यह व्यवहार की विधि को स्वीकार करता है।'' वर्तमान समय में मनोविज्ञान व्यवहार के विज्ञान के रूप में प्रतिष्ठित है। व्यवहार का अध्ययन मूलतः व्यक्ति की मानसिक संरचना व उसके

शारीरिक मानसिक क्रिया प्रणाली पर निर्भर करता है। इसी मानसिक संरचना व मानवीय क्रिया प्रणाली के सम्बन्धों की व्याख्या सांख्य दर्शन तार्किक ढंग से करता है।

सांख्य दर्शन में अन्तःकरण व बहिःकरण

सांख्य दर्शन मानव के व्यवहार की कार्य प्रणाली के सम्पादन में दो प्रकार के साधन उपकरणों अन्तःकरण व बाह्य–करण की भूमिका को प्रदर्शित करता है। यहाँ अन्तःकरण का सम्बन्ध मन, बुद्धि, व अहंकार तीनों के सम्मिलित स्वरूप से होता है जिसे सांख्य योग दर्शन में चित्त के नाम से पुकारा जाता है। बाह्यकरण का सम्बन्ध 5 ज्ञानेन्द्रियों (आँख, कान, नाक, जिह्वा, त्वचा) व 5 क्रमेन्द्रियों (मुख, हाथ, पैर, षायु, उपस्थ) से होता है।

आरेख संख्या :1

सांख्यानुसार ज्ञान प्राप्ति के उपकरण

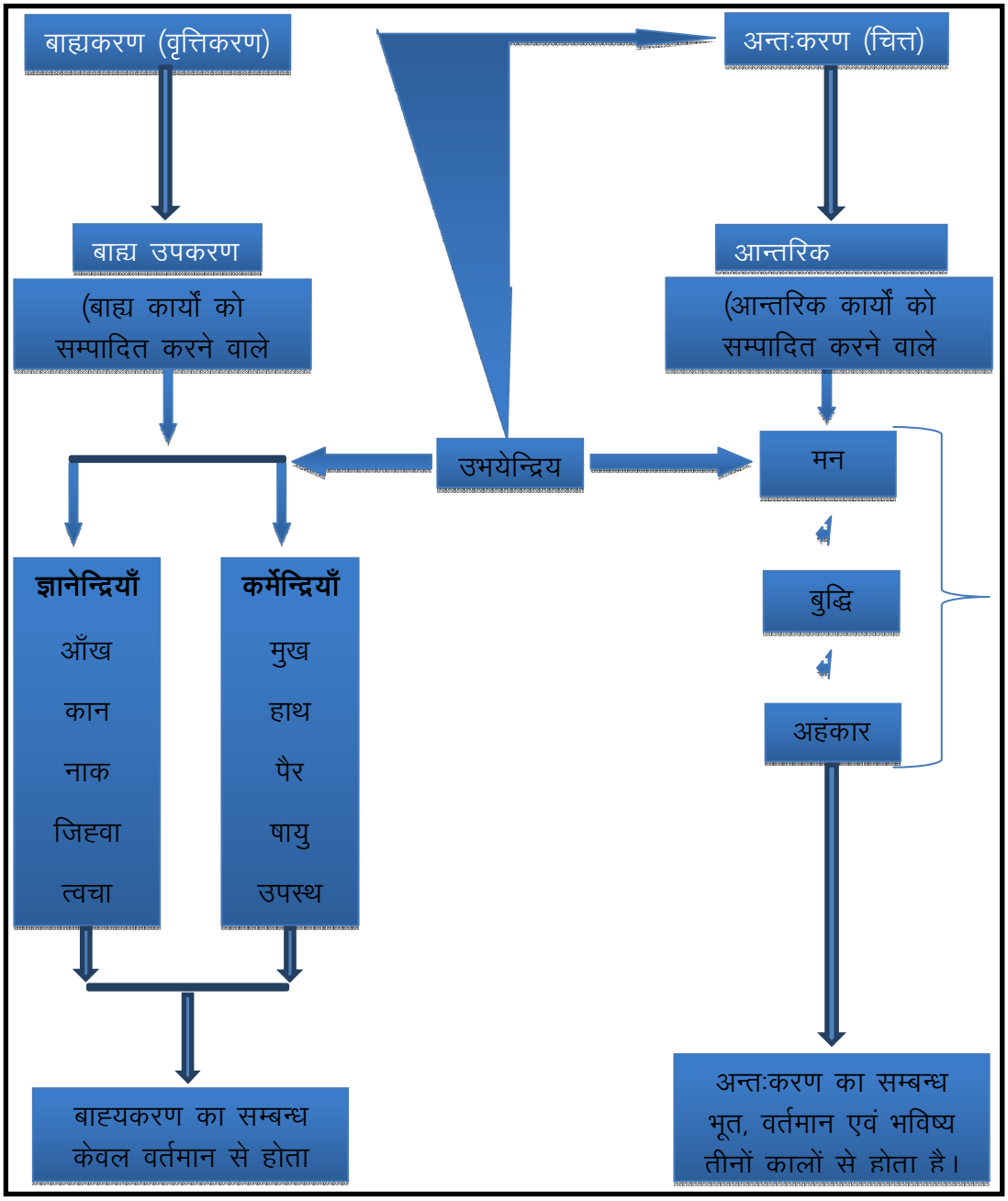

अन्तःकरण व बाह्यकरण के मध्य सम्बन्ध स्थापित करने के लिए सेतू के रूप में कार्य करने वाली इन्द्रिय मन को उभयेन्द्रिय की संज्ञा दी जाती है। मानवीय शरीर के बाह्य कार्यो को सम्पादित करने वाले साधनों को बाह्यकरण कहा जाता है व शरीर के आन्तरिक कार्यो को सम्पादित करने वाले या सम्पादन में अग्रणी भूमिका रखने वाले साधन को अन्तःकरण कहा जाता है। काल की दृष्टि से जहाँ बाह्यकरण का सम्बन्ध केवल वर्तमान से होता है वहीं अन्तःकरण का सम्बन्ध भूत, वर्तमान व भविष्य तीनो कालों से होता है।

उपर्युक्त सम्बन्ध की पुष्टि के संदर्भ में प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक कार्ल युंग ने व्यक्तित्व की व्याख्या करते हुए अचेतन (Unconscious) को व्यक्तिगत अचेतन व सामूहिक (परावैयक्तिक) अचेतन दो भागों में विभाजित किया, जहाँ सामूहिक अचेतन के वर्णन में उसने सम्पूर्ण ब्रम्हाण्ड के अतीत–कालीन संकेतों, घटनाओं एवं ज्ञान के उस भण्डार से किया जो सभी व्यक्तियों का एक होता है। सांख्य दर्शन का अन्तःकरण मनोविज्ञान से एक कदम आगे अतीत, वर्तमान और भविष्य तीनों कालो से सम्बन्ध की व्याख्या करता है। उभयेन्द्रिय के रूप में कार्य करने वाले मन को ज्ञानेन्द्रिय व कर्मेन्द्रिय दोनों ही माना गया है। यहाँ मन के दो प्रधान कार्य हैं, संकल्प व विकल्प, जो कि निश्चयात्मक ज्ञान से पहले की अवस्था है। जब तक ज्ञानेन्द्रियों व क्रमेन्द्रियों का मन के साथ संयोग नही होता तब तक वे अपने विषय विशेष में प्रवृत्त होकर भी किसी परिणाम की ओर अग्रसर नही हो सकती है। जिस प्रकार अपनी पत्नी से झगड़कर सिनेमा हॉल में बैठा हुआ एक व्यक्ति खुले आंख और कान से पिक्चर को देखने के उपरान्त भी कुछ ग्रहण नहीं कर पाता क्योंकि उसकी मनःचेतना उसको उसकी पत्नी की और केन्द्रित किए हुए है। इसी क्रम में सांख्य दर्शन का दूसरा तत्व अहंकार है। 'अहंकार मैं' या ''स्व''का सूचक है। शाब्दिक दृष्टि से अहंकार दो शब्दों (अहम्+आकार) से मिलकर बना है जिसका अर्थ है निराकार अहम का आकार लेना या विस्तार लेना अर्थात् व्यक्ति विशेष द्वारा व्यक्ति से परे अन्य भौतिक या वैचारिक जगत की वस्तुओं, तथ्यों एवं घटनाओं के प्रति स्वयं का आधिपत्य भाव का होना है। अतः जब व्यक्ति किसी तथ्य या घटना के प्रति मैं, मेरा, मेरे द्वारा जैसे शब्दों का प्रयोग कर अपना आधिपत्य स्थापित करता है तब उन सभी प्रक्रियाओं के पीछे व्यक्ति का अहंकार भाव ही सक्रिय होता है जिसके माध्यम से मानव प्रत्यक्ष विषयों पर अपना प्रभाव जमाता है। इन्हीं विषयों को बुद्धि के माध्यम से ग्रहण तथा परित्याग करने का निश्चय किया जाता है। किसी एक इन्द्रिय अथवा एकाधिक इन्द्रियों के माध्यम से किसी विषय या वस्तु के बीच सम्पर्क होने के परिणाम स्वरूप जो वस्तु की अनभिव्यक्ति अनुभूति होती है उसे सांख्य दर्शन में निर्विल्प प्रत्यक्ष (Indeterminate Perception) कहते है। इन्द्रियों के माध्यम से प्राप्त होने वाले ज्ञान के मानसिक संश्लेषण एवं विश्लेषण की यह प्रारम्भिक अवस्था होती है। ज्ञान प्राप्ति की इस अवस्था को मनोविज्ञान संवेदन नाम देता है। संवेदना के इस स्तर पर उद्दीपक का यथार्थ व अर्थपूर्ण ज्ञान प्राप्त न होकर केवल आभास मात्र ही होता है। इन्द्रियों द्वारा प्राप्त अधिकाधिक ज्ञान प्रत्यक्षतः ही ग्रहण होता है और इस प्रत्यक्ष ज्ञान का संश्लेषण विश्लेषण करते हुए परिणाम की प्राप्ति करने का कार्य मन द्वारा सम्पन्न किया जाता है जिसे सांख्य के अनुसार प्रत्यक्ष ज्ञान की द्वितीय अवस्था, सविकल्प प्रत्यक्ष (Determinate Perception) कहा जाता है। इस अवस्था में वस्तु के गुण, सम्बन्ध आदि का निश्चित स्पष्ट अर्थपूर्ण एवं सत्य ज्ञान प्राप्त होता है, जिसे मनोविज्ञान प्रक्रिया रूप में प्रत्यक्षीकरण की संज्ञा देता है।

आरेख संख्या :2
संवेदना व प्रत्यक्षीकरण का स्वरूप

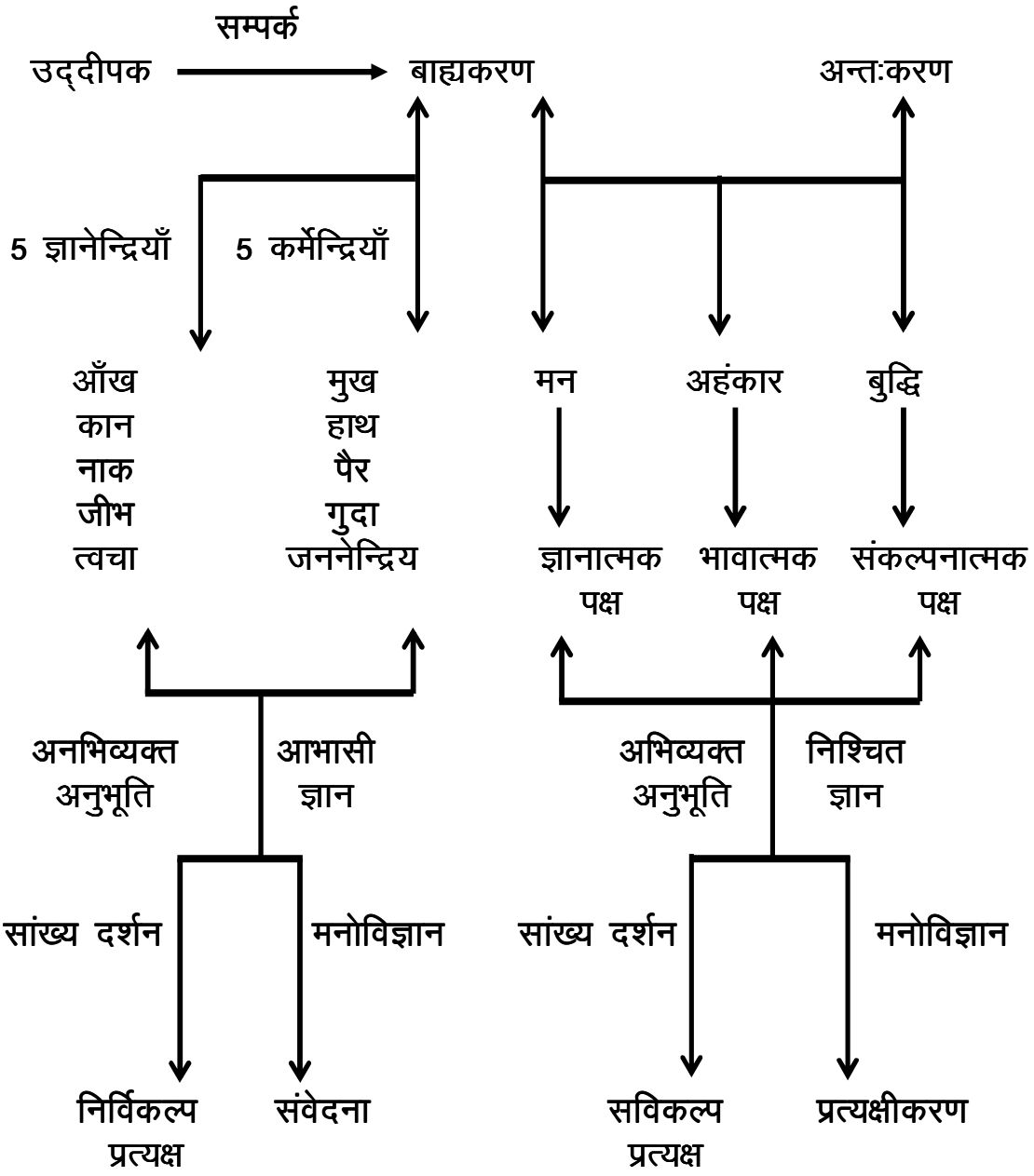

सांख्य दर्शन में 'अहंकार' तत्व

मनोविज्ञान जहाँ जन्म जात मूल प्रवृत्तियों को प्राणी व्यवहार का आधार मानता है वही सांख्य दर्शन व्यक्तियों के व्यवहार में परिलक्षित होने वाले विभिन्न भाव एवं संवेगों के आधार पर व्यक्तित्व की व्याख्या करने हेतु अहंकार के तीन तत्वों सात्विक, राजसिक व तामसिक को मूल कारण मानता है। सांख्य संसार में प्रत्येक वस्तु के निर्माण एवं विघटन की क्रिया के लिए इन्हीं तीन गुणों को उत्तरदायी मानता है और प्रत्येक सांसारिक वस्तु व व्यक्ति में तीन भावों क्रमशः सुख, दुख व उदासीनता के रूप में अन्तर्निहित व सक्रिय मानता है। मनुष्य जीवन में होने वाली भावात्मक ऊथल–पुथल भी इन्हीं गुणों के परिवर्तित संयोग के कारण होता है।

जब इन गुणों की संयुक्त अवस्था में किसी गुण की बाहुल्यता हो जाती है तो उसे उस गुण प्रधान के नाम से जाना जाता है। सत्व गुण बाहुल्य सात्विक, रज गुण बाहुल्य राजसिक व तम गुण बाहुल्य तामसिक नाम से जाना जाता है। सत्व गुण प्रकाशस्वरूप, लघु या हल्का है (शिवहरे, 383), जिस कारण इसकी प्रधानता संतोष, हर्ष, उल्लास, मानसिक प्रफुल्लता आदि सभी प्रकार के सुख प्रदान करते हुए अच्छा मानसिक स्वास्थ्य प्रदान करता है। रजोगुण की बाहुल्यता, मानसिक चंचलता, द्वन्द्व, तनाव दुःख इत्यादि की अनुभूति कराती है और सृष्टि व इसके जीवों को अपने स्वभाव के अनुरूप क्रियाशील बनाती है। तम गुण का स्वरूप भारी व अन्धकारपूर्ण होता है। तमोगुण की बाहुल्यता से विकार बढ़ते हैं और अधिकांश मानसिक विकारों का जन्म तमोगुण की बाहुल्यता के कारण ही होता है। अन्य विचारधाराओं के समान ही सांख्य भी सुख–दुःख आधारित अनुकूल व प्रतिकूल क्रियाओं को उल्लिखित करता है। सुखद वस्तुओं के प्रति अनुकूल व दुखद वस्तुओं के प्रतिकूल क्रियाएँ होती हैं। ऐसा व्यक्ति में सुखद वस्तुओं की प्राप्ति व दुखद वस्तुओं से दूर रहने की प्रेरणा के अन्तर्निहित होने के कारण होता है। सुखद वस्तुओं से मोह के कारण निष्क्रियता की उत्पत्ति होती है। सृष्टि में तमस् से उत्पन्न इस निष्क्रियता को रज की क्रियाशीलता दूर करती है। सत्व व तम क्रियाशील रहने हेतु रज पर ही निर्भर रहते हैं और तमोगुण इस क्रियाशीलता को बाधित करता है। प्राणी की स्वैच्छिक क्रियाओं के मूल आधार के रूप में मन व बुद्धि की पृथक्–पृथक् व संयुक्त भूमिका को स्वीाकर किया है। प्राणी की किसी भी क्रिया के लिए मन की भूमिका को अनिवार्य व अग्रणी माना गया है। कर्मेन्द्रियों के साथ मन के संयोग के कारण ही कार्य सम्पन्न होता है। सांख्य दर्शन के अनुसार मन को सात्विक गुण से व्युत्पन्न माना गया है फिर भी मन के निर्माण व कार्य व्यवहार क्षेत्र में सात्विक, राजसिक व तामसिक तीनों प्रवृत्तियों का संयोग रहता है। यही स्थिति योग दर्श में चित्त के प्रख्याशील, प्रवृत्तिशील व स्थितिशील प्रकारों के रूप में वर्णित है। प्रख्याशील रूप में चित्त में सतोगुण की बाहुल्यता के कारण चित्त तत्वज्ञान, प्रसन्नता, अभिरूचि, उत्साह, दया, क्षमा, धैर्य आदि गुणों से परिपूर्ण रहता है। प्रवृत्तिशील चित्त रजोगुण प्रधान होने के कारण व्यक्ति में उद्यमशीलता व क्रियाशीलता दृष्टिगोचर होती है। व्यक्ति स्वयं को धनवान व शक्ति सम्पन्न करना चाहता है। फलस्वरूप वह इनमें प्रवृत्त होता चला जाता है जिस कारण वह परिताप, शोक, लाभ, ईर्ष्या, आदि से प्रताड़ित होकर दुःख भी भोगता है। चित्त की स्थितिशील अवस्था प्रवृत्तिशील अवस्था के विपरीत तमोगुण प्रधान अवस्था है जिसमें निष्क्रियता, विह्वलता, आवरण, आलस्य, दैन्य, निद्रा आदि तामस गुणों का प्रभाव व्यक्ति को प्रभावित कर निष्क्रिय बना देता है।

सिंगमण्ड फ्रायड (1856–1939) ने मन के गत्यात्मक पहले विचारक्रम में मूल रूप से तीन प्रवृत्तियों अथवा शक्तियों का वर्णन किया है– इदम्, अहम् व परम अहम्। स्पष्ट है कि इन तीन प्रवृत्तियों– इदम्, अहम् व परम् अहम् की सादृश्यता क्रमशः सांख्य के तामसिक, राजसिक व सात्विक से मेल खाती है। एक ओर जहाँ सांख्य दर्शन ज्ञानार्जन की प्रक्रिया में संवेदन, संग्रहण व पुनुरूत्पाद की प्रक्रियाओं के लिए अन्तःकरण की भूमिका को स्वीकार करता है वहीं दूसरी ओर मनोविज्ञान भी बुद्धि, स्मृति, अवधान व प्रत्यक्षीकरण इत्यादि की प्रक्रिया को महत्व देता है। अतः स्पष्ट है कि मनोविज्ञान के विभिन्न प्रत्ययों के लिए सांख्य दर्शन एक समृद्ध आधारशिला प्रदान करता है।

निष्कर्ष

मानव के व्यक्तिगत एवं सामाजिक जीवन को परिष्कृत करने के लिए विभिन्न काल एवं स्थानों में सदैव से ही दर्शन की अग्रणी भूमिका रही है। दर्शन की विशाल ज्ञान धारा में सांख्य दर्शन भारतीय आस्तिक दर्शनों में निरीश्वर योग के नाम से जाना जाता है। प्रकृति से उत्पन्न होने वाले तत्वों और समस्त ब्रम्हाण्ड के विकास क्रम की अवस्थाओं को सांख्य दर्शन 25 तत्वों के माध्यम से वर्णित करता है। सांख्य दर्शन विशुद्ध तत्वों का दर्शन है जिसका प्रयोग करते हुए वर्तमान मनोविज्ञान के विभिन्न प्रत्ययों यथा सृजनात्मकता, व्यक्तित्व, व्यक्तिगत विभिन्नता, समायोजन को सांख्य दर्शन की समृद्ध आधारशिला से और अधिक विस्तारित किया जा सकता है। जिसके परिणामस्वरूप जटिल मानवीय जीवन शैली को व्यवस्थित, संगठित एवं परिष्कृत किया जा सकता है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची :–

1. शिवहरे, एच. आर. (2014), पदार्थ विज्ञान, वाराणसी : सुभारती प्रकाशन।
2. गुरुदत्त (1976), सांख्य दर्शन, नयी दिल्ली : शाश्वत संस्कृति परिषद।
3. Rao, Gaurav & Singh Krishna Pal (2018) : Sankhya Darshan Ki Shaikshik Upadeyta, AED Journal of Educational Studies, Vol. 6 (2) & 7 (1), p-(78-89).
4. सिंह, केदारनाथ, सिंह एस0बी0 (2009), भारतीय दर्शन, नयी दिल्ली : ज्ञानदा प्रकाशन।
5. शास्त्री, एस. (2009), सांख्य–योग–संदेश, मुम्बई : प्रणव प्रकाशन।
6. भट्टाचार्य, आर. (1967), तत्व कौमिदी सहित, सांख्यकारिका, वाराणसी : मोतीलाल बनारसीदास।
7. ओड, एल.के. (2009), शिक्षा की दार्शनिक पृष्ठभूमि, जयपुर : राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी।
8. शर्मा, राममूर्ति (2008), भारतीय दर्शन की चिन्तनधारा, वाराणसीः चौखम्बा पब्लिशर्स